स्वयं से संवाद

जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के आलोक में जीवन का अन्वेषण

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया | जनवरी–अप्रैल 2010 | रु. 5

धर्म का अभिप्राय
पृष्ठ 7

बदलिए, तब देखिए कि क्या होता है
पृष्ठ 3

जहां प्रेम है वहीं समझ है
पृष्ठ 5

ज्ञात से मुक्ति

प्रश्न : आप परम आनंद की स्थिति की बात क्यों करते हैं? इससे 'जो है' से भिन्न किसी अवस्था की आस बंधती है। यदि उस अवस्था में विचार नहीं होते तो चेतना उसके विषय में जान तो सकती नहीं है, फिर आप इस बारे में क्यों बोलते हैं? आपकी इसी परमानंदमय स्थिति वाली बात की वजह से हम सब का यहां आना जारी रहता है।

कृष्णमूर्ति : क्या आप सब इसलिए आते हैं क्योंकि मैं एक परमानंद की स्थिति की बात करता हूं? हे भगवान! मुझे उम्मीद है कि ऐसा नहीं है। देखिए सर, किसी अन्य की आनंदमय स्थिति महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है 'जो है' को समझना। 'जो है', आपका – न कि मेरी या किसी और की आनंदमय स्थिति। यदि ऐसा हो सके कि आप उसे समझ लें – और उसे समझने के लिए आपमें जबरदस्त ऊर्जा होनी चाहिए – तो हमारा संबंध इस बात से है, न कि किसी की आनंदमय अवस्था से। तो मुझे आशा है कि आप इसी के लिए यहां हैं, किसी अन्य की परमानंद स्थिति को प्राप्त करने नहीं जो तब एक भ्रम होगी। उस बात को तो आप नदी में फेंक आइए। हमारा संबंध तो 'जो है' की समझ से, विचार की संरचना, विचार की प्रकृति, जो कि 'जो है', और इसके सही स्थान और इसकी विध्वंसकारी प्रकृति को देखने से, और यह देखने से है कि ज्ञात से मुक्ति और ज्ञात साथ–साथ गतिमान रहें, इसका आप पता लगा सकते हैं या नहीं; क्योंकि यह आपका जीवन है, यह आपका अस्तित्व है, मेरा नहीं, किसी और का नहीं, मि. निक्सन या मि. हीथ या किसी और का

यह आपका जीवन है। मेरा नहीं, किसी और का नहीं, और यदि आप 'जो है' को स्वयं ही वास्तव में जान लेंगे, तो इसके पार चले जाएंगे।

या साम्यवादियों का या पोप का या जीसस तक का भी नहीं – यह आपका जीवन है। और यदि आप 'जो है' को स्वयं वास्तव में जान लेंगे, तो इसके पार चले जाएंगे।

प्र. : मैं असंतुलित चित्त, न्यूरोटिक हूं, तो मैं सोचता हूं कि किसी स्वस्थचित्त प्रतीत होने वाले व्यक्ति के आस–पास होने से क्या मुझे भी स्वस्थचित्त बन जाने में मदद मिलेगी?

कृ. : यदि आप जानते हैं कि आप असंतुलित हैं, तो आप असंतुलित होना बंद कर ही चुके हैं। किंतु हममें से अधिकतर लोग सजग नहीं हैं कि हम असंतुलित हैं, और असंतुलित होने के प्रति सजग न होने के कारण हम किसी अन्य व्यक्ति के साथ रह कर असंतुलन से मुक्त हो पाने की आशा संजोते हैं। लेकिन वह व्यक्ति, जिसके बारे में असंतुलितचित्त वाले आप ऐसा सोचते हैं कि वह स्वस्थचित्त है, असंतुलित ही तो हुआ। यह सिर्फ एक चतुराई भरा वक्तव्य नहीं है। यदि मैं असंतुलितचित्त हूं और सोचता हूं कि आप स्वस्थचित्त हैं, तो मैं कैसे जान सकता हूं कि आप स्वस्थचित्त हैं क्योंकि मैं खुद तो असंतुलित हूं (हंसी) हंसने की बात नहीं। मुझे कैसे पता कि आप संबोधि को उपलब्ध हैं – कृपया इसे सुनें – कि आप मुक्तिदाता हैं, कि आपने स्वर्ग उपलब्ध कर लिया है, जब कि मैं इस दुर्दशा में हूं। तो मुझे यह सब कैसे मालूम? मालूम नहीं हो सकता। लेकिन मैं

अगले पृष्ठ पर जारी

शिक्षाओं की वेबसाइट

कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के संरक्षण के लिए विश्व के कई हिस्सों में संस्थापित कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के सम्मिलित प्रयासों से एक नयी वेबसाइट प्रारंभ हुई है : www.jkrishnamurti.org इस नयी वेबसाइट पर सन् 1933 से 1986 तक कृष्णमूर्ति की अब तक समस्त प्रकाशित पुस्तकों का एक बड़ा हिस्सा, जो औसत आकार की लगभग 200 पुस्तकों के बराबर है, डाउनलोडिंग के लिए उपलब्ध है।

धर्म का अभिप्राय

जो व्यक्ति मुझे समझना चाहते हैं उनके लिए मेरी कामना है कि वे मुक्त हों, आज़ाद हों, यह नहीं कि मुझे ही किसी पिंजरे में तबदील कर डालें जो आगे चलकर कोई धर्म बन जाए। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें तो समस्त भयों से– धर्म के भय से, मुक्ति के भय से, अध्यात्म के भय से, प्रेम के भय से, मृत्यु के भय से, तथा स्वयं जीवन के भय से भी– मुक्त होना होगा।

3 अगस्त, **1929**

क्या संस्कारबद्धता के प्रति सजग होना सम्भव है, बस सजग भर होना, जिसमें किसी प्रकार का कोई द्वंद्व हो ही नहीं? वह सजगता ही– यदि उसे होने दें– सम्भवतः समस्याओं को भस्म कर देगी।

द बुक ऑव लाइफ से

ज्ञात से मुक्ति...

यह सोचना चाहूंगा कि आपने स्वर्ग पा लिया है, क्योंकि इससे मुझे राहत मिलती है। इसी पर हमारे सारे धर्म आधारित हैं, जो कि सरासर बेवकूफी भरी बात है। तो यदि मैं सजग हूं कि मैं असंतुलितचित्त हूं, तो उतना पर्याप्त है।

अब आप किस गहराई से सजग हैं कि आप असंतुलित हैं? आपको बताया किसने कि आप असंतुलित हैं? क्या आपने इस बात का स्वयं पता लगाया है? या आपके मित्रों ने आपको कृपापूर्वक बताया है कि आप असंतुलित हैं? (हंसी) क्या आपने स्वयं यह पता लगाया है कि आप असंतुलित हैं, कि आप स्वस्थचित्त रहकर कार्य नहीं करते? या आप सोचते हैं कि आपने ऐसे व्यक्तियों को देखा है, जो स्वस्थचित्त रहकर कार्य करते हैं, और फिर उस व्यक्ति विशेष से अपनी तुलना की है और कहने लगे हैं, ''मेरा चित्त संतुलित नहीं है।'' आप इस सब को समझ रहे हैं? तो जब आप तुलना करते हैं, तो असंतुलितचित्त होते हैं – ठीक है? जब आप निश्चयपूर्वक कहते हैं कि कोई अन्य व्यक्ति स्वस्थचित्त है, जबकि आप स्वयं असंतुलित हैं, तो वह व्यक्ति अस्वस्थचित्त ही होता है।

अतः महत्त्वपूर्ण बात है गहराई से, गहनतापूर्वक सजग होना कि आप संतुलित नहीं हैं। सजगता असंतुलनवृत्ति को मिटा देती है। आप समझे? यदि मैं सजग हूं कि मैं क्रोध से भरा हूं, जो कि असंतुलनवृत्ति का ही एक रूप है; या ईर्ष्या या फिर शक्ति, पद, प्रतिष्ठा की खोज, ये सब असंतुलनवृत्ति के रूप हैं, यदि मैं इसके प्रति सजग हूं, तो मैं मालूम करना चाहता हूं कि क्या मैं शाब्दिक, बौद्धिक रूप से सजग हूं या यह निष्कर्ष, अवधारणा मात्र है, या मैं इससे परे, और गहरे गया हूं? तब यदि शब्द, निष्पत्तियां, धारणाएं एक तरफ हटा दिए गए हैं, तो मैं वास्तव में सजग होता हूं कि मैं हूं। उस सजगता में क्या मैं अस्वस्थचित्त होता हूं, क्या मैं असंतुलित होता हूं? ज़ाहिर है कि नहीं होता। वे चीज़ें ही तो मुझे असंतुलित बनाया करती हैं। बात आपकी पकड़ में आई?

–सानेन, 20 जुलाई 1972

सुखी होने के लिए, क्या हमें धर्मों की आवश्यकता है? क्या प्रेम के लिए मंदिरों का निर्माण किया जाना ज़रूरी है? सत्य न तो किसी मंदिर के अंधकारपूर्ण गर्भगृह में पाया जा सकता है, और न संगठित समुदायों के अतिप्रकाशित सभाभवनों में। और इसे किताबों या महोत्सवों में भी नहीं पाया जा सकता।

1925

नयी किताबें

जीवन और मृत्यु

''जब आप मरते हैं तब जो कुछ आप जानते हैं उसका अंत हो जाता है। तो जो कुछ आप जानते हैं उसके प्रति क्या अभी ही नहीं मरा जा सकता? तब आप स्वयं जान पाएंगे कि वह सत्य क्या है जिसमें कोई मरीचिका, कोई भ्रांति नहीं है, कुछ भी निजी नहीं है।'' मृत्यु का प्रश्न जीवन के प्रश्न से अलग नहीं है। एक को समझे बिना दूसरे को नहीं समझा जा सकता। थीमबुक 'ऑन लिविंग एंड डाइंग'' का हिंदी अनुवाद 'जीवन और मृत्यु' इस सारे संदर्भ को एक नया आयाम देता है जो विपरीतों से मुक्त है।

राजपाल एंड संज़ द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक की कीमत है 125 रुपये।

कृष्णमूर्ति हिंदी रिट्रीट

'सजगता' विषय पर सत्ताइस सितंबर 2009 से एक तीन दिवसीय हिन्दी रिट्रीट का आयोजन कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर परिसर में किया गया। सजगता के बारे में कृष्णमूर्ति के वचनों के अध्ययन के साथ–साथ सभी सहभागियों ने परिसर में व्याप्त मौन के अपने भीतर छिपी खामोशी से संबंध का अन्वेषण भी किया।

कलकत्ता स्थित कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर से आए मित्रों के साथ एक तीन दिवसीय रिट्रीट ग्यारह अक्टूबर 2009 को सम्पन्न हुई। इसमें कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के मर्म पर विमर्श के अलावा जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण, संस्कारबद्धता तथा सम्यक कर्म पर भी अर्थपूर्ण वार्तालाप हुआ।

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'परिसंवाद' की सदस्यता के लिए शुल्क :

एकवर्षीय सदस्यता : 100 रुपये

पांचवर्षीय सदस्यता : 350 रुपये

आजीवन सदस्यता : 1000 रुपये

उपयुक्त राशि मनीआर्डर के द्वारा अथवा 'के.एफ.आई. स्टडी सेंटर' के नाम डिमांड ड्राफ्ट के द्वारा कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट के पते पर भेजें।

स्वयं से संवाद

राजघाट संवाद अब **'स्वयं से संवाद'** नाम से प्रकाशित होगा। कृष्णमूर्ति की शिक्षा में रुचि रखने वाले मित्रों को यह निःशुल्क भेजा जाएगा। इसकी निःशुल्क प्रति मंगवाने के लिए आप अपना तथा अपने मित्रों के नाम–पते लिखकर हमें भेज सकते हैं। 'स्वयं से संवाद' का ई–संस्करण वेबसाइट पर भी उपलब्ध है। कृपया अपने सुझाव हमें इस पते पर भेजें–

संपादक : 'स्वयं से संवाद' कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001

फोन : 0542–2441289

ईमेल : kcentrevns@gmail.com

वेब : www.j-krishnamurti.org

उत्तरकाशी रिट्रीट

गढ़वाल हिमालय के उत्तरकाशी में भागीरथी नदी के किनारे थोड़ी ऊँचाई पर, तीन एकड़ की पहाड़ी भूमि पर स्थित कृष्णमूर्ति रिट्रीट सेन्टर है। यहाँ लगभग 8-10 व्यक्तियों के अध्ययन हेतु रहने की सुविधा है।

कृष्णमूर्ति रिट्रीट सेंटर, के.एफ.आई.
रनाड़ी, उत्तरकाशी-259151 (उत्तराखण्ड)
दूरभाष : 013712-25417, 9415983690
ई-मेल : krc.himalay@gmail.com

मेरी लट्यन्स द्वारा लिखी गयी किताब
'द लाइफ एंड डैथ ऑफ कृष्णमूर्ति' का आखरी अध्याय

बदलिए, तब देखिए कि क्या होता है

कृष्णमूर्ति की मृत्यु कुछ मायनों में उतनी ही रहस्यमय थी जितना कि उनका जीवन। अपने जीवन के अधिकांश समय तक उन्हें यह महसूस होता रहा कि जीवित रहने की अपेक्षा 'निकल लेना' अधिक आसान है लेकिन यह विडम्बना ही है कि जब वह 'निकल लेना' चाह रहे थे तब उन्हें जीवित रहना पड़ रहा था। उन्हें यह विश्वास था कि उन्हें मालूम है उनकी मृत्यु कब होने वाली है पर मृत्यु एक अप्रत्याशित घटना की तरह उनके सामने आई। ओहाय की अंतिम रिकॉर्डिंग में जब उन्होंने 'बेहूदा भारतीय अंधविश्वासों' की बात की थी तो उनका इशारा भारत में प्रचलित उसी पारंपरिक विश्वास की तरफ था कि कोई धार्मिक पुरुष 'इच्छा–मृत्यु' को आमंत्रित कर सकता है। कृष्णजी अगर चाहते तो शरीर को खाना पहुंचाने वाली ट्यूब को निकलवाकर मृत्यु को बुला सकते थे किन्तु उन्हें लगा कि ऐसा करना आत्महत्या होगी, उस पवित्र उत्तरदायित्व को भंग करना होगा जिसके तहत उन्हें एक देह का जिम्मा सौंपा गया है। लेकिन क्या मृत्यु की 'इच्छा करना' भी – यदि वह पूरी हो जाती – एक तरह की आत्महत्या नहीं होती?

कृष्णजी को आश्चर्य हुआ कि 'वह अन्य' एक बीमार शरीर को ही क्यों धारण रखना चाहता है; क्यों नहीं उन्हें जाने देता। क्या यह बीमारी उनकी किसी गलती का परिणाम है, उन्होंने सोचा। यह पूछा जा सकता है कि उस 'अन्य' ने उन्हें इसलिए मरने दिया क्योंकि उनका शरीर अनुपयोगी हो गया था, या 'उस अन्य' ने एक घातक बीमारी को इसलिए बढ़ने दिया कि कृष्णजी के पास कहने के लिए अब कुछ शेष नहीं रहा था, कारण कि उनके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा अब पूरी हो चुकी थी? किसी भी सूरत में, ऐसा लगता है कि 'उस अन्य' ने आखिर में उनका साथ नहीं छोड़ दिया था।

कृष्णजी को विश्वास था कि 'कुछ' है जो यह निर्णय ले रहा है कि उनके साथ क्या होना चाहिए और जिसके बारे में उन्हें बात करने की अनुमति नहीं थी। पर साथ में वह यह भी कह रहे थे कि कितना अद्‌भुत होता अगर 'कुछ' ऐसा होता जो यह तय कर रहा होता कि उनके साथ क्या–क्या होना है। निश्चय ही यहां विरोधाभास है? लेकिन इसके अलावा भी कई सारी असंगतियां उनके वक्तव्यों में मिलती हैं जो उन्होंने अपने बारे में दिए।

कृष्णजी को इस बात में कभी भी शक नहीं रहा कि वह किसी के द्वारा संरक्षित हैं। उन्हें यह पक्का भरोसा था यदि वह हवाई जहाज में हैं, या वार्ता देने के लिए किसी भी तरीके से यात्रा कर रहे हैं तो उस दौरान उन्हें कुछ नहीं हो सकता था और यह सुरक्षा उस व्यक्ति को भी उपलब्ध रहती थी जो उनके साथ यात्रा कर रहा हो। पर, साथ ही यह उनका फर्ज बनता था कि महज मनोरंजन के लिए वह अपने को ख़तरे में न डालें, जैसा कि ग्लायडिंग करना। उन्होंने न कभी शिक्षाओं के महत्त्व के बारे में संदेह किया और न ही उस शरीर के महत्त्व के बारे में जो उनकी निगरानी में सौंपा गया था। उन्होंने यहां तक कहा था कि ऐसा शरीर बनने में कई सदियां लगी हैं। (हमेशा बात 'इस शिक्षा', 'इस शरीर' की होती थी; 'मेरी शिक्षा', 'मेरा शरीर' उन्होंने कभी नहीं कहा।) ऐसा लगता था कि वह अपने स्वयं के रहस्य के भीतर भी थे और बाहर भी। वह कोई रहस्य निर्मित करना नहीं चाहते थे, इसके बावजूद एक रहस्य सदा मौजूद रहा जिसे समझ पाने में वह स्वयं को भी अक्षम ही पाते थे – उनकी समझ में इस रहस्य को हल करना उनका काम नहीं था, हालांकि इस बात के लिए वह उत्सुक रहते थे कि अन्य लोग इसे हल कर पाएं, तब वह उन लोगों के हल की पुष्टि कर सकेंगे।

कृष्णजी ने कहा था कि 'प्रकटीकरण' के रूप में यह शिक्षा उन तक पहुंची, यदि वह इस बारे में सोचने बैठ जाते तो यह उन तक कभी नहीं पहुंचती। फिर भी स्पष्ट है कि यह शिक्षा उन तक रोजाना पहुंचती रही जब वह अपनी 'नोटबुक' लिख रहे थे। एकाएक 'नोटबुक' लिखने के लिए उन्हें किसी चीज़ ने प्रेरित किया? नोटबुक की सामग्री के अलावा वह पांडुलिपि भी अद्‌भुत है – 323 पेज बिना किसी काट–छांट के।

कृष्णजी के अपने शब्दों के कारण यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि वह किसी चीज़ के 'संवाहक' थे और इसी कुछ के कारण यह शिक्षा उन तक पहुंची थी। हालांकि अधिकांशतः उस कुछ से वह इतने एकाकार रहते थे कि वह कुछ ही वह स्वयं थे। इतना ही नहीं, जब 'वह' उनसे अलग होता था तो वह तब उनके पास वापस आ जाया करता था जब वह इस बारे में गंभीरता से बात करने लग जाते थे या उसके प्रति स्वयं को खुला छोड़ देते थे, खासकर रात्रिकालीन ध्यान के समय; बुलाते वह उसे कभी नहीं थे। कभी कभार उन्हें उसे वहां देखकर अचरज भी होता था। 'नोटबुक' में वह इसका ज़िक्र करते हैं कि कैसे वह स्टाड के शांत वातावरण से पेरिस के आठवीं मंजिल के आवास में पहुंचते हैं और पाते हैं कि ''दोपहर को चुपचाप बैठे, घर की छतों के ऊपर देखते वक्त अत्यन्त अप्रत्याशित ढंग से उस आशिष, उस शक्ति, उस अन्यता का सौम्य स्पष्टता से आगमन हुआ; उसने पूरे कमरे को भर दिया और वहां मौजूद रहा। यह लिखते हुए भी वह यहां मौजूद है।''

मैंने लोगों को यह चर्चा करते हुए सुना है कि कृष्णमूर्ति की प्रेरणा किसी भी अन्य कलाकार की प्रेरणा से भिन्न नहीं थी, ख़ासकर किसी संगीतकार से; कोई चाहे तो मोत्सार्ट की प्रतिभा के स्रोत का

अगले पृष्ठ पर जारी

पता लगाने की कोशिश कर सकता है। यदि यह शिक्षा कृष्णमूर्ति के मस्तिष्क से आयी होती तो यह बात तर्कसंगत लगती, लेकिन मैंने किसी भी प्रतिभा के बारे में यह नहीं सुना कि 'प्रोसेस' जैसे वाकये से उसका गुज़रना हुआ हो। लॉर्ड मैत्रेय की परिकल्पना को यदि हम स्वीकार कर पाते तो कृष्णमूर्ति के रहस्य से तुरन्त पर्दा उठ जाता, जिसके अनुसार मैत्रेय अपने लिए तैयार किसी शरीर को धारण करते हैं। तब 'प्रोसेस' के बारे में जो कुछ भी सुना गया है वह सब अपना उचित स्थान ले लेता – ओहाय, अर्वल्ड और पर्जिन में पहुंचे वे सारे संदेश तथा कृष्णमूर्ति की अपनी यह धारणा कि यह दर्द कुछ ऐसा है जिसे बरदाश्त करना ही होगा, उससे बचने या उसे कम करने का कोई भी प्रयास किए बिना। इस अद्‌भुत रहस्य की अद्वितीय विलक्षणता का खुलासा नित्या के माध्यम से ओहाय में 'लाये गये' इस संदेश से हो जाता है: अभी जो काम चल रहा है वह अत्यधिक महत्त्व का है और अत्यन्त नाजुक है। विश्व में ऐसा प्रयोग पहली बार हो रहा है।

जिस प्रकार 'वर्ल्ड टीचर' होने का खंडन उन्होंने पूरी तरह कभी नहीं किया उसी तरह इस परिकल्पना का खंडन भी उन्होंने पूरी तरह कभी नहीं किया। वह बस यही कहा करते थे कि यह परिकल्पना 'कुछ ज्यादा ही निश्चयपूर्ण' थी, या 'सीधी–साफ नहीं' थी, और सच में ऐसा लगता भी है। ओहाय में 1972 में जब वह एक समूह को संबोधित कर रहे थे तो उनसे पूछा गया कि ''आप कौन हैं?'', तब उनका उत्तर था : मुझे लगता है कि हम लोग किसी ऐसे मसले की तहकीकात कर रहे हैं जिसे चेतन मन कभी नहीं समझ सकता है... कुछ ऐसा विद्यमान है, मानो एक विराट जलाशय हो, जिसे यदि चित्त स्पर्श कर पाता है तो ऐसा कुछ प्रकट होता है जो किसी भी बौद्धिक मिथक से – आविष्कार, अनुमान या रूढ़ि से – उद्‌घाटित नहीं किया जा सकता। ऐसा कुछ है पर मस्तिष्क इसे समझ नहीं सकता है। इसके दो साल बाद जब मैंने उनसे इस बारे में प्रश्न किया तो उन्होंने कहा, हालांकि वह इसका स्वयं पता नहीं लगा सकते, (''पानी यह नहीं जान सकता कि पानी क्या है''), फिर भी उन्हें 'पूरी आश्वस्ति' है कि मेरी जिम्बालिस्ट, मैं और अन्य लोग यदि साथ मिलकर बैठ जाएं और कहें, ''आइए, इसकी तह में जाएं'', तो सच्चाई का पता लगाया जा सकता है, लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ा कि इसके लिए ''आपके मस्तिष्क का रिक्त होना ज़रूरी है''।

अब हम 'खाली मन' पर आ जाते हैं। मेरी पूछताछ के दौरान कृष्णजी बार–बार 'उस बालक' के खाली मन की ओर लौट आते थे। उनका कहना था कि यह एक ऐसी रिक्तता थी जो उनसे कभी अलग नहीं हुई। उन्होंने सवाल किया कि वह क्या था जिसने उस मन को खाली रखा? वह क्या था जिसने उस रिक्तता को हमेशा बचाए रखा? अगर वह स्वयं उस रहस्य के बारे में लिखने बैठते तो शुरुआत उस खाली मन से ही करते। अपनी मृत्यु के नौ दिन पूर्व कहे गए उनके ये शब्द मेरे मन में ऐसे ही गूंजते हैं जैसे कि उनके अन्य कथन : 'अगर आप लोग

उनका कहना था कि यह एक ऐसी रिक्तता थी जो उनसे कभी अलग नहीं हुई। उन्होंने सवाल किया कि वह क्या था जिसने उस मन को खाली रखा? वह क्या था जिसने उस रिक्तता को हमेशा बचाए रखा? अगर वह स्वयं उस रहस्य के बारे में लिखने बैठते तो शुरुआत उस खाली मन से ही करते।

बस यह जान पाते कि आप किससे चूकते रहे हैं – उस अनन्त रिक्तता से।'

कृष्णमूर्ति का कहना था कि जिस थियोसॉफी में उनका पोषण हुआ उससे वह कभी संस्कारबद्ध नहीं हुए। क्या यह मुमकिन नहीं है कि अवचेतन स्तर पर वह उससे संस्कारित हुए हों (हालांकि उन्होंने यह कभी नहीं माना कि अवचेतन जैसा भी कुछ होता है), और जब वह अपने शरीर से बाहर होते थे तो वे सारी बातें, जो भगवान मैत्रेय और मास्टर आदि के बारे में उन्हें बताई गई थीं, उभर आती थीं? लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्हें अपने शरीर से बाहर क्यों आना पड़ता था, और 'प्रोसेस' जैसी घटना की आवश्यकता क्या थी।

एक दूसरा पहलू जिस पर हमें गौर करना है वह ऊर्जा है जो उनमें प्रायः प्रवेश करती रहती थी, या उनसे होकर गुज़रती थी। जब वह इस बारे में गंभीरता से बात कर रहे होते थे कि वह कौन हैं, वह कहते, 'आप इसे अभी, इस कमरे में, धड़कता हुआ महसूस कर सकते हैं।' अपनी आखिरी टेप–रिकॉर्डिंग में उन्होंने कहा, ''मुझे नहीं लगता कि लोगों को इसका एहसास है कि कितनी विराट ऊर्जा और प्रज्ञा इस देह से होकर गुज़री है''। जब मैंने कैसेट में इन शब्दों को सुना तो मुझे तुरंत ब्रॉकवुड पार्क की उस दोपहर का स्मरण हो आया जब ड्रॉइंग रूम के दरवाजे से उस शक्ति ने, उस ऊर्जा ने, मुझे अपने घेरे में ले लिया था – यह उस समय हुआ था जब मुझे इसकी तनिक भी उम्मीद नहीं थी। अगर वह आवेग, वह विराट ऊर्जा कृष्णमूर्ति की देह का सन् 1922 से – यानी जब 'प्रोसेस' की शुरुआत हुई थी तब से – इस्तेमाल कर रही थी, तो यह हैरानी की बात थी कि वह इतने लंबे समय तक जीवित रहे। क्या वह ऊर्जा ही 'वह अन्य' थी? क्या यह ऊर्जा ही उस 'प्रोसेस' की पीड़ा का कारण थी? क्या वह ऊर्जा, वह 'प्रोसेस', सन् 1922 से शुरू होकर उनके जीवन के आखिरी साल तक जारी रहे और वह पीड़ा क्रमशः कम होती गई क्योंकि उनका शरीर धीरे–धीरे उस रिक्तता के सृजन हेतु और अधिक खुलता गया? क्या उस ऊर्जा ने उन्हें मार दिया होता अगर वह अपने पूरे आवेग के साथ उनके भीतर वृद्धावस्था में एकाएक प्रवेश कर गई होती जबकि उनका शरीर उसे ग्रहण करने के लिए पहले तैयार नहीं हुआ होता?

अब मुझे लगता है कि यह प्रश्न अवश्य पूछा जाना चाहिए : क्या कृष्णमूर्ति को अपने बारे में कि वह कौन हैं और क्या हैं, जितना उन्होंने प्रकट किया, उससे कहीं अधिक पता था? जब उन्होंने मुझे और मेरी ज़िम्बालिस्ट को कहा कि अगर हम सच्चाई का पता लगा लें तो वह इसकी पुष्टि कर सकेंगे और हम उसे व्यक्त करने के लिए सही शब्द भी ढूंढ़ लेंगे; तब क्या वह सच में ऐसा कह रहे थे, ''मुझे आपको सच्चाई नहीं बतानी चाहिए, पर हां, अगर आप स्वयं इसका पता लगा लें तो मैं इसकी पुष्टि कर दूंगा कि यह सही है या नहीं''? शायद इस बारे में सबसे महत्त्व की बात उन्होंने मेरी से कही थी। 1985 में अक्टूबर के अन्त में जब वह ब्रॉकवुड से दिल्ली के लिए निकलने वाले थे तो मेरी ने उनसे पूछा था कि क्या अब वह उन्हें फिर से मिल पाएंगी, तब उनका जवाब था : मैं अचानक नहीं मरूंगा.. यह सब किसी और के द्वारा तय होता है। मैं इस बारे में बात नहीं कर सकता क्योंकि मुझे इसकी इजाजत नहीं है। आप समझ रही हैं? यह सब अत्यधिक गंभीर मामला है। कुछ ऐसी बातें हैं जिनकी आपको जानकारी नहीं है। यह सब अत्यन्त

अगले पृष्ठ पर जारी

विराट है, मैं आपको बता नहीं सकता। (ध्यान दें कि सब 'किसी और' के द्वारा तय होता है, न कि 'कुछ और' के द्वारा)। तो कृष्णमूर्ति को अपने बारे में कुछ ऐसी बातों का पता था जो उन्होंने कभी नहीं बतायीं, हालांकि अपनी अंतिम कैसेट में उन्होंने पर्दे का एक छोर ज़रूर उठाया।

कई लोग यह महसूस करेंगे कि कृष्णमूर्ति के रहस्य को समझने का कोई भी प्रयास न केवल समय की बरबादी है बल्कि पूरी तरह गैरज़रूरी है क्योंकि महत्त्व शिक्षा का है न कि शिक्षक का। पर किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने युवा कृष्ण को जाना है और शुरू की कुछ घटनाओं में हिस्सा लिया है, और जो यह स्वीकार नहीं कर सकता कि यह शिक्षा उनके मस्तिष्क में विकसित हुई, उसके लिए यह तब तक एक तरसाती हुई पहेली बनी रहेगी जब तक कि वह सम्भवतः, अपने मस्तिष्क को रिक्त करने में कामयाब नहीं हो जाता। कृष्णमूर्ति ने कहा था : वह वस्तु कमरे में मौजूद है। अगर आप उससे पूछेंगे कि वह क्या है, तो वह कोई उत्तर नहीं देगी। वह कहेगी, ''तुम बहुत ही छोटे हो''।' सच में, यही एक विनम्र अहसास बचा रह जाता है कि हम अपने हमेशा शोर मचाते मस्तिष्क के साथ अत्यन्त छोटे और क्षुद्र हैं। कुछ ऐसा ही उन्होंने अपने अन्तिम टेप में कहा था : सभी लोग ऐसा दावा करेंगे या कल्पना करने की कोशिश करेंगे कि वे उसके संपर्क में आ गए हैं; सम्भवतः वे थोड़ा–बहुत संपर्क में आ पाएंगे, यदि (लेखिका द्वारा रेखांकित 'यदि') वे इन शिक्षाओं को जी सकें।

यदि मनुष्य बुनियादी तौर पर नहीं बदल जाता, मूलभूत रूप से अपने भीतर एक उत्परिवर्तन नहीं ले आता, तो हम अपना विनाश कर डालेंगे। यह मनोवैज्ञानिक क्रांति अभी, इसी क्षण सम्भव है... हजारों साल तो हमने बिता दिये हैं और हम अभी भी बर्बर ही हैं। अगर हम अभी नहीं बदलते तो हम कल भी, और हजारों कल के बाद भी बर्बर ही रहेंगे।" तब अगर कोई यह पूछे : किसी एक व्यक्ति का बदलना कैसे पूरे संसार को प्रभावित कर सकता है? इसके लिए सिर्फ कृष्णमूर्ति का दिया गया उत्तर ही दिया जा सकता है : बदलिए, फिर देखिए कि क्या होता है।

स्रोत जो भी रहा हो, कृष्णमूर्ति की शिक्षा का आगमन विश्व इतिहास के एक निर्णायक दौर में हुआ है। जैसा कि उन्होंने वाशिंगटन में एक पत्रकार को कहा था : ''यदि मनुष्य बुनियादी तौर पर नहीं बदल जाता , मूलभूत रूप से अपने भीतर एक उत्परिवर्तन नहीं ले आता, तो हम अपना विनाश कर डालेंगे। यह मनोवैज्ञानिक क्रांति अभी, इसी क्षण सम्भव है, एक हजार साल बाद नहीं। हजारों साल तो हमने बिता दिये हैं और हम अभी भी बर्बर ही हैं। अगर हम अभी नहीं बदलते तो हम कल भी, और हजारों कल के बाद भी बर्बर ही रहेंगे।'' तब अगर कोई यह पूछे : किसी एक व्यक्ति का बदलना कैसे पूरे संसार को प्रभावित कर सकता है? इसके लिए सिर्फ कृष्णमूर्ति का दिया गया उत्तर ही दिया जा सकता है : ''बदलिए, फिर देखिए कि क्या होता है।''

क्या कभी देखा है आपने अपने सोचने को?
मैंने देखा कि जा रही है वह कार
– एक नीली कार।
क्या इसी अंदाज़ में देख सकता हूं मैं
अपने विचार को,
जब यह गति करता है,
डोलता है एक चीज़ से दूसरी चीज़ की ओर
और जब ऐसा किया करता है विचार
तो पता लगाइये : बजाय इसके कि यह
एक लंबे धागे की तरह खिंचता रहे
क्या इसका अंत हो सकता है?
बीच में तोड़ दीजिए इसे
और देखिए क्या होता है।
तो आप किसी विचार को तोड़ सकते हैं?
कह सकते हैं?
कि भई, काफी हो गया
कुछ ज्यादा ही हो गया–
और उस विचार को वहीं खत्म कर दीजिए
और देखिए कि क्या होता है।
जब अगला विचार इंतजार में हो – उस विचार के आप पर झपट पड़ने से पहले ही
देखिए, अवलोकन करिए
उस खाली जगह में,
उस अंतराल में
होता क्या है?

– इन द लाइट ऑफ सायलेंस
ऑल प्राब्लम्स आर डिजॉल्व्ड से

जहां प्रेम है, वहीं समझ है

प्रश्नः आपकी उपस्थिति का प्रत्यक्ष असर क्या आपकी शिक्षाओं को समझने में सहायक नहीं? क्या शिक्षाओं को हम तब बेहतर ढंग से नहीं समझते जब हममें गुरु के प्रति आदर–प्रेम होता है?

कृष्णमूर्तिः नहीं, सर। जब आप लोगों से प्रेम करते हैं, अपने पड़ोसी से प्रेम करते हैं, तब समझ ज्यादा व्यापक होती है। जब आपमें अपनी बीवी, अपने बच्चे, अपने पड़ोसी के लिए, चाहे वह गोरा हो या काला हो, प्रेम होता है, जब आपके हृदय में सुरभि होती है, गीत होता है, तब उसी से समझ का जन्म होता है।

जब आप मुझे सुनते हैं, तो शायद प्रत्यक्ष रूप से सहायता होती है, क्योंकि जो कहा जा रहा है, उसे समझने के लिए आप अपना दिलो–दिमाग लगाते हैं। यदि आप इसका पता लगाना नहीं चाहते तो आप यहां आते ही नहीं। एक ऐसे व्यक्ति से बात करके, जो ज़्यादा स्पष्ट रूप से समझता है, आपका अपना मन और हृदय भी स्पष्ट हो जाता है। लेकिन यदि आप उस व्यक्ति को अपना गुरु, अपना शिक्षक बना लेते हैं और

अगले पृष्ठ पर जारी

क्या भावनाओं की जड़ विचार में है?

तब आप देखेंगे कि भाव, या संवेदन स्वाभाविक, स्वस्थ, सामान्य होते हैं। किंतु जब विचार हावी होने लगता है, तब सारी खुराफात की शुरुआत हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : क्या भावनाओं की जड़ विचार में है?

कृष्णमूर्ति : भावनाएं क्या हैं? भावनाएं संवेदन ही हैं, है कि नहीं? आप एक सुंदर कार देखते हैं, या एक सुंदर मकान देखते हैं, या किसी सुंदर स्त्री या पुरुष को देखते हैं, और फिर वह संवेदनात्मक बोध इंद्रियों को जाग्रत करता है। फिर क्या होता है? संपर्क होता है, और तब इच्छा यानी विचार का प्रवेश होता है। क्या आप ऐसा कर सकते हैं कि वहीं रुक जाएं और विचार को प्रवेश न करने दें, उसे हावी न होने दें? मैं एक सुंदर मकान देखता हूं जो सही अनुपात में बना हुआ है, उसमें एक सुंदर लॉन है, तथा एक खूबसूरत बगीचा है : सारी इंद्रियां प्रतिक्रियारत हो जाती हैं क्योंकि वहां अतीव सौंदर्य है – यह बहुत ही अच्छी तरह से रखा हुआ एक सुव्यवस्थित, साफ–सुथरा घर है। आप ऐसा क्यों नहीं कर पाते कि इसी पर रुक जायें और विचार को प्रवेश न करने दें जो, ''मुझे इसे हासिल करना ही है'' और इस तरह की तमाम बातें कहने लगता है। तब आप देखेंगे कि भाव, या संवेदन स्वाभाविक, स्वस्थ, सामान्य होते हैं। किंतु जब विचार हावी होने लगता है, तब सारी खुराफात की शुरुआत हो जाती है।

अतः यह हमें स्वयं ही पता लगाना है कि क्या यह संभव है कि हम किसी भी चीज़ को अपनी समस्त इंद्रियों के साथ देखें और देखकर बात वहीं ख़त्म कर दें और उससे आगे न बढ़ें – ऐसा कर के देखिये। इसके लिए सजगता के एक असाधारण एहसास की ज़रूरत है जिसमें किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं होता और इसलिए कोई द्वंद्व नहीं होता। करना सिर्फ यह है कि जो है, उसका पूरी तरह से अवलोकन हो, सभी इंद्रियां प्रत्युत्तर दें और मामला वहीं ख़त्म हो जाए। इसमें अगाध सौंदर्य है क्योंकि आखिरकार सौंदर्य और क्या है?

–ट्रुथ एंड एक्चुएलटी

'गैदरिंग' राजघाट

धार्मिक मन – ऊर्जा के एकत्रीकरण की सहयात्रा

कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया द्वारा हर वर्ष 'गैदरिंग' अर्थात सम्मेलन का आयोजन किया जाता है, जिसमें कृष्णमूर्ति को सुनने–पढ़ने वाले मित्रों को एक–दूसरे से मिलने का, सीखने का, संवाद करने का सुअवसर उपलब्ध होता है। इस बार की 'गैदरिंग' राजघाट, वाराणसी में सम्पन्न हुई, जिसका केन्द्रीय विषय था 'धार्मिक मन'। अपनी समस्त ऊर्जा को सजगता, अवधान के लिए इकट्ठी करना (कृष्णमूर्ति ने यहां भी 'गैदरिंग' शब्द का इस्तेमाल किया है) ही धर्म है – यह वक्तव्य धर्म को सीधे रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जोड़ देता है; इसके साथ प्रयोग किये जा सकते हैं, इस पर सवाल उठाए जा सकते हैं, इसकी कसौटी इसे जीने में है, उपदेश में पारंगत बनने में, बातें बनाने में नहीं। यह नयी सदी का धर्म है, जिससे साम्प्रदायिकता, समूहदंभ और अवैज्ञानिकता का कोई वास्ता नहीं। इसी धर्म के अन्वेषण में सब सहभागी हुए, और यहां से विदा होने पर भी, यह 'गैदरिंग', यह अन्तर्यात्रा जारी रहे, यह शुभकामना एक दूसरे के प्रति और अपने प्रति भी सबके स्नेहिल हृदयों में थी।

सिर्फ उसे ही अपना प्रेम और सम्मान देते हैं तो दूसरों के प्रति आपमें सम्मान का अभाव पैदा जो जाता है। आपने ग़ौर किया सर, कि आप मेरे प्रति कितना सम्मान जता रहे हैं और अपने पड़ोसियों, अपनी पत्नी और अपने नौकरों (यदि कोई है आपके पास) आदि के प्रति आप कितने विचारहीन और उदासीन रहते हैं। इस तरह का विरोधाभास यह संकेत देता है कि हर व्यक्ति के प्रति आपके मन में असम्मान की भावना है। यह कोई बड़े महत्त्व की बात नहीं कि आप इस वक्ता के साथ कैसा व्यवहार करते हैं लेकिन आप अपने पड़ोसी, अपनी पत्नी और नौकर के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। मुझे सम्मान देना, एवं दूसरों को न देना – यह तो पाखंड है, जो प्रेम को नष्ट कर देता है। प्रेम ही समझ लाता है। जब आपका हृदय भरा हुआ होता है, तब आप शिक्षक को, भिखारी को, बच्चों की हंसी को, इंद्रधनुष को और मानव की वेदना को सुनेंगे। हर पत्ती में, मृत पत्ती में भी उसका अस्तित्व है जो शाश्वत है। लेकिन हमें इसे देखना नहीं आता क्योंकि हमारे दिलो–दिमाग इस खोज के अलावा बाकी तमाम बातों से भरे हुए हैं।

इसलिए एक के प्रति आदर की कोई सार्थकता नहीं है यदि आपमें हरएक के लिए आदर न हो – आदर यानी स्नेह, दयालुता, ख़याल रखने का जज़्बा। और जब प्रेम होता है, परवाह होती है, उदारता होती है, किसी तरह का वैमनस्य पोषित नहीं किया जा रहा होता, तब आप सत्य के एकदम करीब होते हैं। प्रेम आपको संवेदनशील बनाता है, आपके भीतर की दीवारों को हटाता है। जो संवेदनशील है वही फिर से नवीन होने में सक्षम है। तभी सत्य का आगमन होता है। यदि आपके मन, हृदय पर बोझ हो तब वह नहीं आ सकता।

तो मुझे सुनने के दौरान अगर आप बौद्धिक रूप से उद्दीपित–प्रोत्साहित हो रहे हैं, तो इसके कुछ मायने नहीं हैं क्योंकि सारे उद्दीपन होते इंद्रियगत ही हैं। इसके मायने तभी हैं जब यह आपके रोज़मर्रा के कर्म से जुड़ पाए, जब यह लोगों से, विचारों से तथा वस्तुओं से आपके संबंध पर रोशनी डाले। फर्क इस बात से पड़ने वाला है कि आप अपने नौकर के साथ, अपनी बीवी के साथ, अपने पति के साथ, अपने पड़ोसी के साथ कैसे पेश आते हैं; सत्य के लिए, अज्ञात के लिए बिलकुल खुली हुई ग्रहणशीलता है समर्पण। जहां प्रेम है, वहीं समझ है।

बंबई 14 मार्च 1948

धर्म का अभिप्राय

धर्म से हमारा आशय है समस्त ऊर्जा को एकत्रित करके किसी तथ्य की छानबीन करना : यह पता लगाना कि क्या कुछ ऐसा है जो पावन है। समस्त ऊर्जा को एकत्रित करना, जो तब यह पता लगाने में सक्षम होगी कि क्या कोई ऐसा सत्य है जो विचार द्वारा नियंत्रित, गठित, या प्रदूषित न किया गया हो।

आज सुबह मैं इस प्रश्न पर बात करना चाहूंगा कि वह जो पावन है, क्या है वह, धर्म का अभिप्राय क्या है और ध्यान क्या है। पहले तो हमें यह पता लगाना होगा कि वास्तविकता क्या है और सत्य क्या है। मानव ने युगों–युगों से सत्य को खोजने की, या सत्य में जीने की कोशिश की है; और उसने कई प्रतीकों, निष्कर्षों का प्रक्षेपण किया है, उसने मन या हाथों के द्वारा प्रतिमाओं का निर्माण किया है और सत्य की कल्पना की है, या उसने विचार द्वारा सत्य का पता लगाने का प्रयास किया है। और मैं सोचता हूं कि वास्तविकता व सत्य में जो फर्क है यदि उसका पता लगाना है तो हमें विवेकशील होना होगा, और जब हमें यह स्पष्ट हो जाएगा कि वास्तविकता क्या है, तब शायद हम सत्य में अंतर्दृष्टि पाने में समर्थ हो सकें।

संसार के कई धर्मों का कहना है कि एक स्थायी, अनन्त सत्य है, किन्तु इस दावे का महत्त्व बहुत कम है। हमें इसे खुद ही खोजना है, सैद्धांतिक, बौद्धिक या भावनात्मक तौर पर नहीं, बल्कि असल में पता लगाना है कि क्या हमारा ऐसे विश्व में रहना हो सकता है जो सत्य से परिपूर्ण हो। धर्म से हमारा आशय है समस्त ऊर्जा को एकत्रित करके किसी तथ्य की छानबीन करना : यह पता लगाना कि क्या कुछ ऐसा है जो पावन है। हम धर्म को इस अर्थ में ले रहे हैं, उस धर्म की बात नहीं हो रही है जिसमें आस्था, हठधर्मिता, परंपरा या कर्मकांडों का उनके उच्च–निम्न पायदानों सहित समावेश रहता है। हम धर्म शब्द का प्रयोग इस अर्थ में कर रहे हैं : समस्त ऊर्जा को एकत्रित करना, जो तब यह पता लगाने में सक्षम होगी कि क्या कोई ऐसा सत्य है जो विचार द्वारा नियंत्रित, गठित, या प्रदूषित न किया गया हो।

वास्तविकता का मूल अर्थ वस्तु या वस्तुएं है। और वास्तविकता क्या है यह जानने के लिए, विचार क्या है इसे समझना आवश्यक है; क्योंकि हमारा समाज, हमारे धर्म, हमारे तथाकथित रहस्यदर्शन मूलभूत रूप से विचार की उपज हैं। यह मेरी राय या मेरा आकलन नहीं, बल्कि एक तथ्य है। सारे धर्म, यदि आप गौर से उन्हें देखें, बिना किसी पूर्वाग्रह के उनका अवलोकन करें तो आप पाएंगे कि वे विचार की ही उपज हैं। मतलब यह कि हो सकता है आपको किसी तत्त्व का प्रत्यक्षबोध हुआ हो, सत्य में आपको अंतर्दृष्टि उपलब्ध हुई हो, और आप शब्दों में उसे मुझे संप्रेषित करें और मैं आपके कथन से उसकी हवाई तस्वीर खींच कर उसे एक विचार में बदल दूं, और फिर उस विचार के अनुसार मैं जिया करूं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी हम यही करते आए हैं : किसी के कथन से एक काल्पनिक तस्वीर खींचना और फिर उससे एक निष्कर्ष निकाल कर उस निष्कर्ष के अनुसार जीना। और आमतौर से इसे ही हम धर्म कहते हैं। अतः हमें पता लगाना होगा कि विचार कितना सीमित है और इसकी क्षमताएं क्या हैं, यह कितनी दूर तक जा सकता है, और इसके प्रति पूर्णतया सजग रहना होगा कि विचार उस क्षेत्र में न घुसे जहां विचार के लिए कोई जगह नहीं है।

पता नहीं कि आप यह समझ पा रहे हैं या नहीं? देखिए, हम सिर्फ शाब्दिक रूप से ही संवाद नहीं कर रहे हैं, अर्थात हम साथ–साथ विचार कर रहे हैं, न तो हम सहमत हो रहे हैं और न ही असहमत, बल्कि मिलजुल कर विचार कर रहे हैं, अतः हम इसमें सहभागी हैं; ऐसा नहीं है कि वक्ता आपको कुछ दे रहा है और आप ले रहे हैं, बल्कि हम इसमें संग–संग सहभागी हैं, अतः यहां कोई प्रमाणपुरुष, कोई अथॉरिटी नहीं है। और एक अशाब्दिक, मौन संवाद भी होता है, जो कहीं अधिक कठिन होता है, क्योंकि जब तक हम शब्दों के पूरे मायने स्पष्ट रूप से न समझ लें, यह न समझ लें कि मन किस तरह से शब्दों के जाल में फंसा हुआ है, कि शब्द किस तरह हमारी सोच को आकार देते हैं, और जब तक हम इससे परे न जा पाएं, तब तक शब्दातीत संवाद हो नहीं पाएगा, जो कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहां हम दोनों का ही जतन कर रहे हैं कि शब्दों में और शब्दों से परे भी संवाद हो पाए। जिसका अर्थ हुआ कि इसमें हम दोनों की रुचि एक ही समय पर, एक ही तल पर तथा एक–सी तीव्रता के साथ होनी आवश्यक है, अन्यथा हमारे बीच संवाद नहीं हो पाएगा। यह प्रेम की तरह ही है; प्रेम एक ही समय, एक ही तल पर होने वाला एक तीव्र एहसास है। नहीं तो आप और मैं एक दूसरे के प्रेम में नहीं हैं।

मेरे खयाल से इस बात से हम सब सहमत हैं – कम से कम हममें से अधिकतर, यहां तक कि वैज्ञानिक भी – कि विचार एक भौतिक प्रक्रिया है, एक रासायनिक प्रक्रिया है। अनुभव व स्मृति के तौर पर जो जानकारी हमने संचित कर रखी है विचार उसी का दिया प्रत्युत्तर है। अतः विचार तत्त्वतः एक वस्तु ही है। न तो पावन विचार और न ही श्रेष्ठ विचार जैसा कुछ है, यह तो मात्र एक वस्तु है। और इसका कार्य वस्तुओं के विश्व में है, वह विश्व है प्रौद्योगिकी का, सीखने का, जैसे सीखने की, देखने की तथा सुनने की कला सीखना। और वास्तविकता इसी क्षेत्र में है। जब तक हम इस काफी जटिल समस्या को समझ नहीं लेते हम इसके परे नहीं जा पाएंगे। हम ढोंग

अगले पृष्ठ पर जारी

रच सकते हैं या कल्पना कर सकते हैं कि हम समझ गए हैं, किन्तु कल्पना व ढोंग का उस मनुष्य के जीवन में कोई स्थान नहीं है जो वास्तव में गंभीर है और यह जानने का इच्छुक है कि सत्य क्या है।

जब तक विचार की गति है, जो समय और माप है, तब तक, उस क्षेत्र में, सत्य का कोई स्थान नहीं है। जो हम सोच रहे हैं, वह वास्तविकता है, और जो उस विचार का कृत्य है यानी कि एक धारणा, एक सिद्धान्त, जिसे अतीत में मिली जानकारी से भविष्य में, कुछ फेरबदल के साथ, प्रक्षेपित किया जा रहा है, वह भी वास्तविकता है। यह सब वास्तविकता के विश्व में है। हम वास्तविकता के विश्व में रहते हैं – यदि आपने स्वयं का अवलोकन किया है तो आप देख पाएंगे कि स्मृति की हमारे जीवन में कितनी बड़ी भूमिका है। स्मृति यांत्रिक होती है, विचार यांत्रिक होता है, यह कम्प्यूटर का ही एक प्रकार है, एक यंत्र है, जिस तरह कि मस्तिष्क भी है। और विचार का अपना महत्त्व है। बिना भाषा के ज्ञान के मैं बातचीत नहीं कर सकता; अगर मैं ग्रीक भाषा में बोलूं तो आप मुझे समझ नहीं पाएंगे। किसी भाषा को सीखने के लिए, कार चलाना सीखने के लिए, फैक्टरी इत्यादि में काम करने के लिए विचार आवश्यक है। पर मनोवैज्ञानिक रूप से विचार ने 'मैं' की वास्तविकता को उत्पन्न किया है। 'मैं', 'मेरा', मेरा घर, मेरी जायदाद, मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरे बच्चे, मेरा देश, मेरा भगवान – यह सब विचार की उपज है। और इस क्षेत्र में ही हमने एक दूसरे के साथ संबंध बनाया हुआ है, जिसमें निरंतर द्वंद्व रहता है। यही विचार की सीमा है।

जब तक हम वास्तविकता के विश्व में व्यवस्था न ले आएं, तब तक हम इससे आगे नहीं बढ़ सकते। अपनी दैनिक गतिविधियों में हम अपना जीवन अव्यवस्थित ढंग से जी रहे हैं, यह एक तथ्य है। और क्या यह संभव है कि हम सामाजिक दृष्टि से, आचार की, नीति इत्यादि की दृष्टि से वास्तविकता के इस विश्व में, विचार के इस विश्व में व्यवस्था कायम कर सकें? और वास्तविकता के विश्व में व्यवस्था कौन कायम करेगा? मैं अव्यवस्थित जीवन जी रहा हूं – अगर मैं ऐसा कर रहा हूं तो – और अव्यवस्थित होने पर, क्या मैं अपने दैनिक जीवन के तमाम क्रियाकलाप में व्यवस्था ला सकता हूं? हमारा दैनिक जीवन विचार पर आधारित है, हमारे संबंध विचार पर आधारित हैं, क्योंकि मैंने आपकी एक छवि बना रखी है और आपने मेरी कोई छवि बना रखी है, और हममें जो भी संबंध है वह इन दो छवियों के बीच ही है। छवियां उपज हैं विचार की, जो स्मृति, अनुभव इत्यादि का प्रत्युत्तर है। अब क्या वास्तविकता के इस विश्व में व्यवस्था कायम हो सकती है? यह सच में एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जब तक वास्तविकता के विश्व में व्यवस्था स्थापित न कर ली जाए, तब तक आगे छानबीन का कोई आधार ही नहीं बनता। क्या वास्तविकता के विश्व में व्यवस्थित ढंग से बरताव करना संभव है, विचार द्वारा निर्धारित किसी प्रतिमान के अनुसार नहीं, क्योंकि वैसा करना तो अव्यवस्था ही होगी? क्या वास्तविकता के विश्व में व्यवस्था कायम करना संभव है? यानी न तो कोई युद्ध हो, न कोई द्वंद्व, न ही विभाजन। व्यवस्था में नितांत सदाचरण निहित है, सदाचरण व्यवस्था का सार है – वैसा सदाचरण नहीं जो किसी रूप–रेखा का अनुसरण हो, क्योंकि वह तो यांत्रिक हो जाया करता है। तो वास्तविकता के इस विश्व में कौन व्यवस्था कायम करेगा? मनुष्य ने कहा है, ''भगवान कायम करेगा। भगवान पर भरोसा करो और जीवन में व्यवस्था आ जाएगी। भगवान को प्रेम करो और व्यवस्था उपलब्ध हो जाएगी।'' किन्तु वह व्यवस्था यांत्रिक बन जाती है क्योंकि हमारी इच्छा सुरक्षित रहने, बने रहने की है, या यों कहें कि हम जीने का आसान से आसान तरीका ढूंढ़ लेना चाहते हैं।

अतः हम पूछ रहे हैं : व्यवस्था कौन लाएगा वास्तविकता के इस विश्व में जहां विभ्रम है, दुख है, पीड़ा है, हिंसा और वैसा ही और सब है? क्या विचार उस वास्तविकता में – वास्तविकता की उस दुनिया में, जिसका निर्माण विचार ने ही किया है, व्यवस्था कायम कर सकता है? क्या आप मेरा प्रश्न समझ रहे हैं? कम्युनिस्टों का कहना है कि परिवेश को नियंत्रित करके मनुष्य के भीतर व्यवस्था कायम की जा सकती है। मार्क्स के अनुसार, राज्य तब विसर्जित हो जाएगा– आप वह सब कुछ जानते ही हैं। उन्होंने व्यवस्था कायम करने की कोशिश की है किन्तु मनुष्य अव्यवस्था में ही रहा है, यहां तक कि सोवियत संघ में भी। अतः हमें यह पता लगाना होगा कि यदि विचार व्यवस्था कायम नहीं कर सकता, तो कौन करेगा?

अब हम इसकी थोड़ी छानबीन करेंगे। इस अव्यवस्था को – जिसमें हम रह रहे हैं, जो द्वंद्व, अंतर्विरोध, परस्पर–विरोधी कामनाएं, पीड़ा, दुख, भय, सुख की चाह और वह सब है, अव्यवस्था की इस सारी संरचना को – क्या हम बिना विचार के देख सकते हैं? क्या आप मेरा प्रश्न समझ रहे हैं? क्या आप इस घोर अव्यवस्था को, जिसमें हम बाह्य तथा आंतरिक तौर पर रहे चले जा रहे हैं, विचार की किसी भी हलचल के बगैर देख सकते हैं? क्योंकि यदि विचार की कोई भी हलचल हो रही है तो वह और ज्यादा अव्यवस्था पैदा करने जा रही है, है कि नहीं?

हम यह पता लगाने जा रहे हैं कि क्या समय के तौर पर विचार का समापन हो सकता है। क्या विचार का अंत हो सकता है मापन के तौर पर, जिसका अर्थ है तुलना करना, और समय के तौर पर यानी यहां से वहां – समय की गतिविधि में यह सब शामिल है – क्या उस समय पर विराम लग सकता है? यही ध्यान का सार है। आप समझ रहे हैं? तभी व्यवस्था और इस तरह सदाचरण का आगमन होता है। अभ्यास द्वारा पोषित सदाचरण नहीं, क्योंकि उसके लिए तो समय की दरकार होती है और इस वजह से वह सदाचरण है ही नहीं, बल्कि विचार के थमने में, उसका अंत होने में ही सदाचरण निहित है...

–जे. कृष्णमूर्ति

ट्रुथ एंड एक्चुएलिटी

यदि आप प्रकृति को चोट पहुंचाते हैं,
तो अपने आप को ही
चोट पहुंचा रहे होते हैं।

द होल मूवमेंट ऑफ लाइफ इज़ लर्निंग

'स्वयं से संवाद'
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया,
राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001
संपादक : मुकेश गुप्ता
संयुक्त संपादक : चैतन्य नागर

स्वामी 'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस–1/208 के–1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 002 से प्रकाशित। संपादक : मुकेश गुप्ता